हीन्दी उपन्यास ओर राष्ट्रवाद

रीपनकुमार महेन्द्रभाई पटेल
गुजरात यनिवर्सीटी
नवरंगपुरा अहमदाबाद-गुजरात

प्रत्येक राष्ट्र एक स्वयंभू जीवमान ईकाई है। अतः प्रत्येक राष्ट्र मे अस्तित्व बोध होना सहज स्वाभाविक है। जेसे में एक व्यकित हुं मेरा एक पृथक अस्तित्व है। उसी प्रकार हम एक राष्ट्र है हमारी एक पहचान भी है। व्यकित का जीवन नश्वर है, पर राष्ट्र चीरजीवी है। अतः राष्ट्र की पहचान के तत्व शाश्वत होंगे। हम ऐक राष्ट्र हैं। तो राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं उसके प्रति गौरव और उसके संरक्षण की स्वाभाविक ईच्छा रहना अवश्यंभावी है। प्रत्येक राष्ट्र के लिए उसकी अस्मीता भी उसी तरह महत्वपूर्ण है जिस तरह किसी मनुष्य के लिये उसका व्यक्तित्व। राष्ट्र की परिभाषा एक ऐसे जनसमुह के रुप में की जा सकती है, जो कि एक भौगोलिक सीमांओं में एक निश्चित देश में रहता हो, समान परंपरा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकता के सुत्र में बँधा हो और जिसमें परंपरा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो जिसमे एकता के सूत्र बाँधने की उत्सुकता पाई जाती हों।

राष्ट्र शब्द का अर्थ,व्युत्पति

राष्ट्र के अंग्रेजी शब्द नेशन की उत्पत्ति लेटिन भाषा के **Nation** शब्द से हुई हैं। जिसका अर्थ जन्म या जाति हे। परंतु राष्ट्र शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार उसकी व्याख्या संकीर्ण न और अशुध्द है, कयोंकि राष्ट्र शब्द में राजनीतिक और आध्यात्मिक दोंनो धारणाएँ छिपी हुई हैं। ब्रिस्टाईल के शब्दों में ˜ राज्य और कुछ और मिलाकर राष्ट्र बनता है, राज्य में जब जनता की एकता का भाव होता है, तो वह मिलकर राष्ट्र बनता है।˜ परंतु क्राईस का मत है कि ˜ राष्ट्र एक ऐसी राष्ट्रीयता है जो राजनीतीक समुदाय के रूप में संगठित और स्वतंत्र हो या स्वतंत्र होन की ईच्छा रखती है।˜ विपिनचंद्र का मत हैं कि - ˜राष्ट्र यांत्रिक संर्विदा से उत्पन्न नहीं है, वह पृथक व्यकितयों का कुत्रिम जमाव नहीं है, वह एक अवयवी है और सर्वव्यापी बुध्धि तथा नैतिक बंधन से अनुप्राणित है। राष्ट्र मनुष्यों का ही आवध्दित तथा विस्तारीत स्परूप है। वह विराट पुरुष का बाह्यकरण है।˜

राष्ट्रवाद की अवधारणा

राष्ट्रीय भावना का विकास कब और केसे हुआ ईस संबंध में निश्चित नहीं कहा जा सकता है। सामान्य अनुमान के आधार पर केवल कहा जा सकता हैं कि प्राचीनकाल में राष्ट्रीयता का विकास तब हुआ होगा, जब कि लोगों ने अपनी मूल सामाजिक प्रवृत्तियों के फलस्परूप समूहों और कबीलों में रहना आरंभ किया। लेकिन यूनान के राज्यों की परंपरा ने राष्ट्रीयता के स्थान पर स्थानीयता की प्रवृत्ति को जन्म दिया

और रोमवासियों की राष्ट्रीय प्रवृत्ति भी विशाल साम्राज्य की स्थापना के बाद लुप्त हो गई। वस्तुतः देश की प्राकृतिक सीमाएँ राष्ट्रीयता के विकास में सर्वाधिक बलशाली सिध्ध हुई हैं और हर मनुष्य में अपनी जन्मभूमि के प्रति अगाध प्रेम होता है। भारत या भारतमाता जेसे शब्द सुनकर हमारे शरीर में उल्लास का जो संचार होता है यह ईस बात का प्रमाण है। स्वामी विवेकानंद ने राष्ट्र के समर्पण हेतु कहा हे कि ˜अगले पचास वर्ष के लिए अन्य सब व्यर्थ के देवताओं को अपने मन से निकाल दो, यही एकमात्र देवता है, जो जागृत है सर्वत्र उसी के हाथ, उसी के पैर, सर्वत्र उसी के कान है, और हर वसतु को आच्छादित किए हुए है। अन्य सब देवता सो रहे है और पहले देवता जिनकी हमें आराधना करनी है हमारे देशवासी हैं।

हिन्दी गध साहित्य में उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें राष्ट्रवाद दो भागों में देखा जा सकता है।

स्वतंत्रता पूर्व और हिन्दी उपन्यास

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संधर्ष के वक्त हिन्दी साहीत्य एवं खासकर उपन्यासों की जो भूमिका रही वह इसके अंतर्गत आती है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के समय अंग्रेजी हकुमत के सामने लडाई में हिन्दी साहित्य एवं खासकर उपन्यास की भूमिका राष्ट्रवाद के रूप में जानी जाती है।हिन्दी साहित्य में साम्राज्यवाद-विरोध की एक लम्बी पंरपरा है जिसकी शरूआत भारतेन्दु युग से होती है। भारतेन्दुयुगीन साहित्य़ नवजागरण की पहली मंजिल है, हालाकि हिन्दी प्रदेश में नवजागरण की पहली मंजिल सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम को माना जाता है। जिस समय भारतेन्दु का देहावसान हुआ, तब 1885 अखिल भारतीय स्तर पर पहले राजनीतिक सगंठन के रुप में कांग्रेस की स्थापना हुई। इन दो ऐतिहासिक घटनाओं के बीच भारतेन्दु युग का साहित्य अपनी चिरपरिचित राष्ट्रीय चेतना और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना लेकर आया। इन दोनों ऐतिहासिक घटनाओं का हमारे राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से ही नहीं, हिन्दी के जातीय साहित्य से भी गहरा संबंध है।

सन 1857 के स्वाधीनता संग्राम से पहले सशस्त्र विद्रोहों की परंपरा में संन्यासी-विद्रोह की बहुत चर्चा की जाती है। संन्यासियों का यह सशस्त्र विद्रोह सन 1773 में उतरी बंगाल में शरू हुआ और 1800 तक चला। संन्यासी विद्रोह का इतना बडा असर था कि एक सौ ग्यारह साल बाद इसी विद्रोह के आधार पर 1882 में बंगला उपन्यासकार बंकिमचंद्र चटोपाध्याय ने आनंदमठ उपन्यास का सर्जन किया जो बाद में स्वाधीनता आंदोलन में भारतीय युवाओं का प्रेरणा स्त्रोत बना विशेषतः बंगाल के क्रांतिकारी इससे अत्यधिक प्रेरित थे।भारतेन्दु और उनके समकालीन में स्वदेशी की भावना मौजूद थी। स्वदेशी माल के समर्थन में भारतेन्दु ने कविवचनसुधा में गहरी चिंता प्रकट करते हुए लिखा था कि अगर हम विलायती साज-सामान खरीदेंगे तो उसका परिणाम यह होगा कि हमारा का द्रव्य तो अन्त में हमारे देश में निकल जाएगा। ज्यों-ज्यों देश में राष्ट्रीय चेतना का विकास होता जा रहा था, त्यों-त्यों भारतेन्दु में साम्राज्यावाद विरोधी चेतना आकार ग्रहण

कर रही थी और वह अपने समकालीनों के प्रेरणास्त्रोत बनते जा रहे थे। स्वयं भारतेन्दु ने कोई पूरा उपन्यास नहीं लिखा पर वे अन्यों के लिए प्रेरणा स्त्रोत बनें।

भारतेन्दु के समय में ही मौलिक उपन्यास लिखने के जो प्रयास हुए थे, उनके परिणामस्वरूप उस समय कुछ सामाजिक और नारी शिक्षा उपन्यास प्रकाश में आए थे। पंडित गौरी दत्त का "देवरानी-जेठानी" की कहानी मुंशी इश्वरीप्रसाद "मुदर्रिस" और मुंशी कल्याण राय का "बामा शिक्षक", श्रध्दाराम फिल्लोरी का "भाग्यवती" तथा लाला श्रीनिवास दास का "परिक्षा गुरू" आदि रचनात्मक द्रृष्टि से मौलिक उपन्यास है जो हिन्दी साहित्य प्रारभिंक उपन्यास होने के साथ साथ स्वतंत्रता के आंदोलन मे अपना योगदान देने वाले उपन्यास है। भारतेन्दु के समकक्ष बालकृष्ण भटट, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास के उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना के साथ साथ सुधारवादी अभिगम देखने को मिलता है। भारतेन्दु के बाद समाज सुधार की भावना सर्वोपरी रही है। एक अंतर अवश्य आया, उपदेशात्मक के स्थान पर उपयोगितावाद प्रमुख हो गया। उपयोगिता के द्रृष्टिकोण से चीजों को देखा जाने लगा। लेकिन मूल भावना समाज सुधार की ही रही है, स्वर भी आदर्शवादी ही रहा। अंतिम दशकों में स्वच्छन्दतावाद की नयी प्रवृति ने उपन्यासों मं जन्म अवश्य लिया था जिसमें सामंती मूल्यों और संस्कृति तथा सामाजिक रूढियों पर सीधी चोट की और स्वच्छंद प्रेम की हीमायत की।

राष्ट्रीय आंदोलन के नये उभार के साथ जो राजनीतिक गतिविधियां और घटनाएँ घट रही थी, उन सबका उपन्यासों से कोई सीधा संबंध नहीं था लेकिन वह दूसरे रूप मे प्रकट होती थी। वे अंग्रेजी शासन से दुखी और क्षुब्ध थे, आर्थिक नीतियों का उल्लेख करते थे, राजनीतिक पराधीनता और आर्थिक शौषण का भी अनुभव करते थे। इस युग के उपन्यासकारों की राष्ट्रीयता की भावना जातीयता के घेरे में ही निर्मित और प्रकट होती है। यह एक ऐसी राष्ट्रीयता है जो अंग्रेजी राज की आर्थिक नीतियों के प्रति क्षुब्ध तो है पर उसमें साम्राज्यवाद विरोधी चेतना नहीं के बराबर है। उसमे स्थान पर उन्होंने देश की सुख-समृध्दि की इच्छा शकित के स्वर्णिम अतीत और आदर्शो-मूल्यों के प्रति अपनी आसक्ति प्रकट की है।अस समय के प्रमुख उपन्यासकारों मे लज्जाराम मेहता ने अपने उपन्यास हिन्दु गृहस्थ, स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी, आदर्श हिन्दु तथा आदर्श दम्पति आदि में पाश्चात सभ्यता संस्कृति का विरोध करते हुए पुरातन और गली-सडी संस्कृति के तत्वों का गौरवगान किया है। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने उपन्यास अधखिला फूल मे धर्म के मार्ग पर चलने की सलाह दी है।

11 वीं सदी के दौरान सांस्कृतिक-सामाजिक प्रश्नों पर बुध्दिजीवी वर्ग में एक गंभीर बहस छिडी हुई थी। समाज सुधार आंदोलनों में सतीप्रथा, विधवा विवाह, जातिगत भेदभाव, पर्दा पर्था, आदि समस्याओं पर ध्यान केन्द्रीत था। राजाराममोहनराय, दयानंद सरस्वती, तिलक आदि ने इन समस्याओं के खिलाफ जंग छिडी हुई थी। तो दूसरी तरफ किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास राजकुमारी, अंगुठी का नगीना आदि में समाज सुधार का ही अभिगम अपनाया गया था।

इस प्रकार स्वतंत्रता पूर्व के उपन्यासों में खास तौर पर हिन्दी उपन्यासों की भूमिका सुधारवादी रही है। इस समय के उपन्यासों ने लोगों में जागृति और सुधार लाते हुए राष्ट्रीय आंदोलनों के लिए एक पृष्ठभूमि तैयार की है। उसके बाद प्रेमचंद , और निराला, जयशंकरप्रसाद, पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र, वृन्दावनलाल शर्मा, प्रतापनारायण श्री वास्तव आदि के उपन्यासों में भी अपने पूर्व के उपन्यासकारों की तरह सुधारवादी अभिगम और साम्राज्यावाद देखने को मिलता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में राष्ट्रवाद

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय समाज एक नवीन पध्दति में प्रवेश तो कर गया परंतु भुख, गरीबी, बेरोजगारी तथा विकृत राजनीति की शोषण प्रवृत्ति से स्वतंत्रतापूर्व के सभी स्वप्न भंग हो गये। इन सब परिस्थितियों से लडना या इस लडत में साथ देना ही स्वतंत्रता के बाद का राष्ट्रवाद समझा जाने लगा।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी उपन्यास किसी ऐसी सीमा में नहीं बांधे जा सकें, जिन्हें कोई नाम दिया जा सके, उनका विस्तार इतना अधिक हुआ कि यदि कहा जाय कि मानव जीवन की समग्रता सिमटकर हीन्दी उपन्यासों में एकत्रित हो गयी तो अतिशयोकित नहीं होगी। ˜स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास की दिशाएँ, उसका केनवास, उसका विस्तार इतना सीमाहीन हो गया कि एक स्थान पर उंगली रखकर, एक दिशा में हाथ उठाकर उसकी संपूर्णता का बोध कर देना, दिशा और दिशासूचक यंत्र दोनों को झुठला देता है।˜

स्वतंत्रता के पश्चात प्राचीन और नवीन विचारधारोओं बीच झूलते भारतीय समाज में अपंग व्यवस्थाओं के सहारे आगे बढना प्रारंभ कर दीया। जर्जर आर्थिक ढांचे के सहारे भला जनता की आकांक्षाओं की पूर्ती हो सकती थी? संपूर्ण विश्व में सत्ता प्राप्ति के लिए हत्या, अपहरण की प्रवृति एक आम बात हो गयी, उनके सनसनीखेज प्रभाव वाले विचारकों मार्कस, फ्राइड, काम, वैकेट आदि के अनुयाइयों की संख्या हर देश में दिखाई देने लगी। भारत भी इससे अछूता नहीं था। विचारों का संघर्ष भारतीय युवाओं को मंथन के लिए प्रेरित करने लगा। ऐसे में युग लेखकों की एक नयी पीढी तैयार होने लगी जिसकी अभिव्यकित में विद्रोंह के स्वर थे। स्वतंत्रता के बाद नये हिन्दी उपन्यासों की जो अनेक बदलती दिशाए द्रृष्टिगत होती है, उनका आभास प्रेमचंद के गोदान से ही मिलने लगता है। गोदान हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसने सभी परंपरागत भ्रमजाल, तिलिस्म और मनोरंजन के सस्ते नुस्खे के चौखटे उखाड फेंका और सामाजिक यथार्थ को उसके समस्त कोणों से उदगाटित कर एक नवीन औपन्यासिक धर्म का सूपत्रपात किया। प्रेमचंद के पूर्व उपन्यासकारों ने बाहय क्रियाकलापों एवं घटना व्यापारों को ही प्रधानता दी थी। प्रेमचंद ने मनुष्य के बाहय आचरणों के साथ-साथ उसके विचारों एवं अनुभूतियों का अंकन भी प्रारंभ किया।

आज का उपन्यासकार ऐकिहासिक, सामाजिक या राजनीतिक उपन्यास नहीं लिखता, वह उसके माध्यम से आधुनिक व्यकित चेतना को परखता, प्रतिष्ठित करता और उसका मूल्याकंन करता है। स्वतंत्रता के बाद के उपन्यासों का उदेश्य, ध्येय, साध्य तथा अभिव्यकित का माध्यम सभी कुछ बदले गये है ये उपन्यास अब

समाज से हटकर व्यकित तथा उसकी अंतश्चेतना को अत्यधिक महत्व दे रहे हैं। एक अर्थ में यह जगत एवं जीवन संश्लिष्टता से विशिष्टता की और शीघ्र गति से बढ रहा है। इस नयी पीढी के में श्री लाल शुकल का "राग दरबारी" , राही मांसूम राजा का ˜कटरा बी आर्ज़ू˜, मन्नू भंडारी का ˜आपका बंटी˜, रामदरश मिश्र का ˜जल टूटता हुआ˜, गिरिराज किशोर का ˜चिडीया घर˜ , गोविन्द मिश्र का ˜लाल पीली जमीन˜, आदि उल्लेखनीय हैं।

स्वतंत्रता के पश्चता हिन्दी उपन्यासों में शैलीगत परिवर्तन भी बहुत तेजी से हुए। बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों को नवीन तथ्यों के माध्यम से अभिव्यकित किया जाने लगा। शेखर एक जीवनी नवीन शैली का प्रारंभिक उपन्यास है। अश्कली का ˜गिरती-दीवारें˜, हजारी प्रसाद द्धिवेदी का ˜बाणभट की आत्मकथा˜ , धर्मवीर भारती का ˜सूरज का सातवा घोडा˜, रांधेय का "हजूर", आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

वस्तुतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीति का दबदबा समाज के प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई पडना आरंभ हो गया और सारा का सारा भारतीय समाज मधुमख्कियों की तरह राजनीति के छत्ते से चिपक गया। स्वतंत्रता के बाद लिखे गये हिन्दी उपन्यासों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप से सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों का हास का कारण वर्तमान राजनीतिक ही हैं। युवा उपन्यासकारों ने इस दृष्टि से सक्रीय भूमिका निभाई है और राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रशंसनीय कार्य किया हैं।साहित्यकार युग द्रष्टा भी होता है और युगसृष्टा भी। विकृतिग्रस्त राष्ट्रजीवन का यथार्थाद्रष्टा बनकर जहाँ वह अपने साहित्य में यथार्थ चित्रों का सर्जन करता है वहीं पौराणिक आख्यानों, गौरवपूर्ण ऐतिहासिक चरित्रों और घटनाओं तथा अपनी कल्पना में सुधारवादी जीवनद्रृष्टियों को अपनाता हुआ नये राष्ट्र जीवन के सर्जन में भी वह प्रवृत हुआ हैं। इस युग का संपूर्ण उपन्यास साहित्य लेखकों की निष्ठा का ज्वलंत प्रमाण हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. प्रमुख राजनीतिक विचारक-लेखक पुखराज जैन
2. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन- लेखक.डो.वी.पी.वर्मा
3. व्यकित चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास- लेखक.डो. पुरुषोत्तम दुबे